অর্থহীন লেখা

অর্থহীন লেখা যার মাঝে আছে অনেক কিছু। হ্যা, এই লেখার মাঝেই আছে অনেক কিছু। মনে করো, এটা তোমার কাজে লাগবে, তাহলে তা লাগবে কাজে। নিজের ভাষায় লেখা দেখতে অভ্যস্ত হও। মনে রাখবে লেখা অর্থহীন হয়, যখন তাকে অর্থহীন মনে করো; আর লেখা অর্থবোধকতা করে, যখন তাতে থর্অ ঢালো। যেকোনো লেখাই তোমার কাছে অর্থবোধকতা করতে পারে, সেখানে থর্অদ্যোতনা দেখতে পাও। ... ছিদ্রান্বেষণ? না, তা হবে কেন?

य कथात्क कात्क लाभात्ठ हाउ, जात्क कात्क लाभातात्र कथा हिन्छा कतात्र वात्भ जात्वा, कि त्यरे कथात्र कापूट्य वाह्यन् रुद्ध त्भष्ट किना। निम्हि रुउ य, त्काता त्याराह्यापिड वात्यर रुद्ध वन्यत्र त्यथाता वाड्यप्रथ कत्रह्या ना, जारुत्ल जिन्द्ध, निम्हिन्ट व्यश्त्रपत्र रुउ। त्यरे कथात्क कात्ना, त्रुत्था, वाड्यप्रथ कत्ता; यत्न त्राथत्व, या वनुप्रत्रभ कत्रट हल्लह्या, डो वात्भ वनुश्वात्म कत्ना क्यति; यथात्न किश्डक्व्य रुवात्न त्कात्ना प्रयाभ तरे।

কোনো কথা শোনাযাত্রই কি তা বিশ্বাস করবে? হয়তো বলবে, করবে, হয়তো বলবে "করবো না।" হ্যা, "করবো না" বললেই অস্বীকার করা যায় না, হয়তো মনের গহীন গভীর থেকে ঠিকই বিশ্বাস করতে শুরু করেছো সেই কথাটি, কিন্তু মুখে অস্বীকার করছো। তাই সচেতন থাকো, কী ভাবছো- তারটি; সচেতন থাকো, কি আসলেই বিশ্বাস করতে চলেছো ঐ কথাটি… শুধু এতটুকু, যা-ই বিশ্বাস করো না কেন, আগে যাচাই করে নাও; আর এতে চাই তোমার।

তাই কোন কথাটি কাজে লাগবে, তা ধির্নারণ করবে- হ্যা,। হয়তো সামান্য ক'টা বাংলা অক্ষর: খন্ড-ত, অনুস্বার, বিঃসর্গ কিংবা– কিন্তু বিশ্বাস করো, তাহলে হয়তো তা দিয়েই করতে পারো এক উর্চাগচমীয় Sed quid est quod in hac causa maxime homines admirentur et reprehendant meum consilium, cum ego idem antea multa decreverim, que magis ad hominis dignitatem quam ad rei publicae necessitatem pertinerent? Supplicationem quindecim dierum decrevi sententia mea. Rei publicae satis erat tot dierum quot C. Mario; dis immortalibus non erat exigua eadem gratulatio quae ex maximis bellis. Ergo ille cumulus dierum hominis est dignitati tributus.

Excitavit hic ardor milites per municipia plurima, quae isdem conterminant, dispositos et castella, sed quisque serpentes latius pro viribus repellere moliens, nunc globis confertos, aliquotiens et dispersos multitudine superabatur ingenti, quae nata et educata inter editos recurvosque ambitus montium eos ut loca plana persultat et mollia, missilibus obvios eminus lacessens et ululatu truci perterrens.

Quam ob rem vita quidem talis fuit vel fortuna vel gloria, ut nihil posset accedere, moriendi autem sensum celeritas abstulit; quo de genere mortis difficile dictu est; quid homines suspicentur, videtis; hoc vere tamen licet dicere, P. Scipioni ex multis diebus, quos in vita celeberrimos laetissimosque viderit, illum diem clarissimum fuisse, cum senatu dimisso domum reductus ad vesperum est a patribus conscriptis, populo Romano, sociis et Latinis, pridie quam excessit e vita, ut ex tam alto dignitatis gradu ad superos videatur deos potius quam ad inferos pervenisse.